(3)

<u>वृत्तीय यात्रा</u>

शिविरों को घर समझ लिया है,
असली घर को भुला दिया।
यात्री कितनी गहन नींद में,
निज मानस को सुला दिया।। 1।।

झूले तुमने झूले बहुधा,
आशा और निराशा के।
कहाँ गई वह सहज दिव्यता,
वश में क्षुधा पिपासा के ।। 2 ।।

तुमसे तो खग श्रेष्ठ बिहरते,
नीड़ छोड़कर अम्बर में।
तुम उलझे हो आदि काल से,
क्षरित हो रहे अम्बर में ।। 3 ।।

स्वामी करके भेजा था तुम,
बनें दास निज भक्तों के ।
विवश हुए सब भोग रहे हो,
फल अपने ही तत्वों के।। 4 ।।

नहीं शून्यता भर पाओगे,
जग के सारे भोगों से।
क्या पाओगे अन्धकार मे,
स्वंय भटकते लोगों से ।। 5 ।।

जब तक उथल-पुथल है मन में,
तब तक है विश्राम कहाँ,
अपने को ही समझ न पाए,
पाओगे तुम राम कहाँ ।। 6 ।।

वृत्तों में तुम रहे दौड़ते,
मंजिल कैसे पाओगे।
अर्जन सभी फिसल जाते है,
रिक्त हाथ रह जाओगे।। 7 ।।

वृथा गया श्रम सारी वय का,
देख तुम्ही पछताते हो।
किन्तु भूलकर नए सिरे से,
फिर भी तुम लग जाते हो।। 8 ।।

चेतन की ऊर्जा लगती है,
बस असार के संग्रह में।
सरिता बह जाती जीवन की,
लोग मोद मद विग्रह में ।। 9 ।।
अभिनय बार-बार कर करके,
मानस पात्री भूत हुआ।
वेश स्वंय पहचान बन गया,
व्यक्ति बड़ी लघु व्यक्त हुआ।। 10 ।।

नही पुण्य करता या पापी,
दृष्टा मात्र अकड़ता हो।
नहीं अन्य कोई केवल तुम,
सुख-दुःख कर्ता हर्ता हो।। 11 ।।

केवल यात्रा नहीं प्रयोजन,
हो सकती गंतव्य बिना।
पांथ स्वंय गंतव्य छिपाए,
भ्राम्यमान है दीनमना ।। 12 ।।